मधुबनी कला एवं महिला सशक्तीकरण

बीना जैन
सह आचार्य,
चित्रकला विभाग,
रा.वि.वि., जयपुर।

सारांश

भारत में लोक कला की देन महिलाओं को जाती है, जिन्होंने अपनी कला एवं संस्कृति की धरोहर को आज भी जीवित रखा है चाहे वह बिहार राज्य की मधुबनी चित्रकला हो या पंजाब की फुलकारी हो या महाराष्ट्र की वरली कला सभी में महिलाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। मधुबनी कला आज दुनिया भर में अपनी अलग पहचान रखती है। यह एक मात्र कला है जो महिलाओं द्वारा विकसित की गयी थी जिसमें पुरुषों का योगदान लेशमात्र भी नहीं था। यह प्राचीन लोक कला ऐसे पुरुष प्रधान समाज में उभरी जब महिलाओं को घूँघट में कैद रहना पड़ता था और महिलाएँ घर की चौखट के बाहर कुछ नहीं जानती थीं तब मिथिलांचल की महिलाओं ने इस कला के माध्यम से अपने मनोभावों को व्यक्त ही नहीं किया बल्कि विश्व मानचित्र पर अपनी उपस्थिति दर्ज करायी।

मुख्य शब्दः कोहबर, जगदम्बा देवी, पुपुल जयकर, बृहदारण्यक उपनिषद्, भास्कर कुलकर्णी, मिथिलांचल, यशोदा देवी, वशिष्ठ–सूत्र

प्रस्तावना

सम्पूर्ण संसार में नारी सर्वाधिक सुन्दर, आकर्षक और मोहक मानी गयी है। वह प्रकृति की अनुपम कृति है जो विविध रूप धारण करती है। दायित्वों का निर्वाह और समर्पण उसके स्वभाव के अभिन्न अंग हैं क्योंकि नारी सृष्टि के प्रारम्भ से ही अनंत गुणों की आगार रही हैं। वह करुणा, ममता, क्षमा, सहनशीलता, त्याग, प्रेम व वात्सल्य की प्रतिमूर्ति मानी जाती है।

भारतीय समाज में नारी का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहा है। उसके विकास में ही समाज का विकास निहित है। नारी के अभाव में सृष्टि की कल्पना सम्भव नहीं है। भारतीय संस्कृति में नारी की देवी के रूप में स्तुति की गयी है। जहाँ जन्म लेने के उपरान्त नारी के विविध रूपों के दर्शन होते हैं। ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता'' अर्थात् जहाँ नारियों की पूजा की जाती है वहाँ देवता निवास करते हैं। वशिष्ठ–सूत्र में लिखा है, ''कि उपाध्याय की अपेक्षा दशगुण अधिक प्रतिष्ठित आचार्य है, आचार्य से सौ गुना अधिक प्रतिष्ठित पिता है, और पिता से सहस्रगुण अधिक प्रतिष्ठा–योग्य माता है''[1] माता के प्रति यह आदर भावना भारतीय संस्कृति की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है।

सभ्यता के उदय से ही मानव जाति का विकास करना ही मानव का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य रहा है। यह कार्य निरन्तर स्त्रियों के द्वारा ही होता आया है। यदि भूत, वर्तमान एवं भविष्य को परस्पर सम्बन्धित करने का कार्य स्त्री नहीं करती तो आज समाज में न कोई सभ्यता होती और न ही कोई संस्कृति। वैदिक काल में स्त्रियों को पुरुषों के समान सभी धार्मिक अधिकार प्राप्त थे। वे भी पुरुषों के समान ब्रह्मचर्य–व्रत का पालन कर विद्याध्ययन कर सकती थीं। अनेक स्त्रियों ने वैदिक ऋचाओं तक की रचना की। लोपामुद्रा, घोषा, सिकता, निवावरी, विश्ववारा, अदिति इत्यादि इसी प्रकार की विदुषी स्त्रियाँ थीं जिनका ऋग्वेद में उल्लेख है। बृहदारण्यक उपनिषद् में गार्गी, मैत्रेयी आदि तत्त्वचिन्तक स्त्रियों का उल्लेख है। विदेह जनक की राजसभा में गार्गी ने याज्ञवल्क्य के साथ शास्त्रार्थ किया था।[2] ऐतरेय ब्राह्मण से परम विदुषी कुमारी गन्धर्वगृहीता का परिचय मिलता है। प्राचीन काल में धार्मिक कार्यों में पुरुष के साथ स्त्री की उपस्थिति आवश्यक मानी जाती थी। शतपथ ब्राह्मण में बताया गया है कि केवल पति द्वारा अग्नि को अर्पित की हुई वस्तुएँ ईश्वर स्वीकार नहीं करते।[3] इसी कारण अश्वमेज्ञ यज्ञ के अवसर पर राम ने सीता की स्वर्ण–प्रतिमा निर्माण कर यज्ञ की पूजा पूर्ण की। इतिहास साक्षी है 'पन्नाधाय' व 'झाँसी की रानी' जैसी महान महिलाओं के बलिदान का जिन्होंने देश हित में अपने पुत्र एवं पति के प्राणों की भी चिन्ता नहीं की।[4]

नारी में कोमलांगी होने के बावजूद भी असीम शक्ति विद्यमान है। नारी किसी भी सभ्यता और संस्कृति की निर्विवाद जननी रही है। भारतीय साहित्य, कला एवं संस्कृति का गौरवमयी इतिहास रहा है इस कला और

संस्कृति ने हमारे देश को एक निर्बाध गति प्रदान की है। हमारे देश की पहचान कला, साहित्य एवं संस्कृति जैसे स्तम्भों पर टिकी है जो हमें चित्रकला – मूर्तिकला में विविध रूपों में देखने को मिलती है। वैदिक साहित्य में कला सम्बन्धी भाव सहस्रों की संख्या में पाये जाते हैं किन्तु उस युग की कला–कृतियाँ उपलब्ध नहीं होती।केवल लौरिया नन्दगढ़ में उत्खनन में स्वर्णपत्र पर अंकित 'नग्न नारी' मूर्ति प्राप्त हुई है जिसे 'श्री' अथवा 'लक्ष्मी' माना जाता है। 'जिमर' के अनुसार इसे भारतीय नारी आकृति का प्रथम आदर्श माना जा सकता है जिसका अनुकरण परवर्ती युगों में होता रहा।[5] सिन्धु घाटी की सभ्यता से लेकर बौद्धकाल, मध्यकाल, मुगल, राजस्थानी, पहाड़ी शैलियों, एवं आधुनिक काल में विभिन्न रूपों में नारी का अंकन मिलता है। कहीं नारी को माँ के रूप में, कहीं नृत्य की मुद्रा में, कहीं आदर्श प्रेमिका के रूप में, कहीं राग – रागनी के रूप में, तो कहीं दीन–हीन दशा में सुन्दर चित्रों का अंकन मिलता है। प्रत्येक काल में उसे श्रद्धा एवं आदर्श के रूप में चित्रित किया गया, आज चारों ओर नारी सशक्तीकरण की गूँज सुनाई देती है। समाज में आज महिलाओं को सम्मान मिला है। उन्हें पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त हैं वे पुरुषों के बराबर कन्धे से कन्धा मिलाकर चल रही हैं। आज की नारी समस्त क्षेत्रों में अपने कौशल की पताका फहरा रही है।''कला एवं संस्कृति'' के क्षेत्र में विशेष रूप से महिलाओं ने अपना एकाधिकार प्राप्त कर लिया है चाहे चित्रकला हो या लोक कला या ग्रामीण कलाएँ, सभी में अपना परचम लहराया व राष्ट्र का गौरव भी बढ़ाया है।

भारत में लोक कला की देन महिलाओं को जाती है, जिन्होंने अपनी कला एवं संस्कृति की धरोहर को आज भी जीवित रखा है चाहे वह बिहार राज्य की मधुबनी चित्रकला हो या पंजाब की फुलकारी हो या महाराष्ट्र की वरली कला सभी में महिलाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

उत्तरी भारत में गंगा के बायीं ओर का भाग मिथिलांचल कहलाता है। इसके अन्तर्गत दरभंगा, मुजफ्फरपुर सहरसा, सीतामढ़ी, जनकपुर और मधुबनी जनपद आते हैं। कहा जाता है कि यही वह पावन भूमि है, जहाँ सीता जी ने अवतार लिया था और 'मैथिली' नाम पाया था।[6]

मधुबनी का शाब्दिक अर्थ है 'मधुबन' अर्थात् 'शहद के जंगल'। यह शाब्दिक अर्थ उन परिस्थितियों की और इंगित करता है जहाँ पर मधुमक्खियों के छत्तों से शहद एवं मोम प्राप्त किया जाता था।

मधुबनी–चित्रकला परम्परा का आरम्भ मैथिल क्षेत्र की महिलाओं द्वारा हुआ। समाज में प्रचलित उत्सव, त्यौहार एवं पारम्परिक अवसरों पर महिलाएँ धार्मिक आस्था के फलस्वरूप मिट्टी के रंगों द्वारा घर–बाहर, आँगन आदि की लिपाई–पुताई के पश्चात् कूची (ब्रश) के माध्यम से सज्जा का कार्य करती थी। चित्रकारी की इसी लोक परम्परा से मधुबनी कला का जन्म हुआ। मिथिला क्षेत्र में प्रचलित सांस्कृतिक आख्यानों और पुराणों को आधार मानकर दीवारों तथा कपड़े पर की जाने वाली कला 'मधुबनी कला' है।[7]

(चित्र–1)

मधुबनी चित्रकला के कोहबर रूप (भित्ति चित्रण) का निर्माण मुख्यतः विवाह के अवसर पर, वधु के घर बारात आने के पूर्व चित्रांकन करने की परम्परा है इस प्रक्रिया को 'कोहबर' लिखना कहते हैं। विवाह के पश्चात् वर–वधु जिस कक्ष में पहली बार मिलते हैं उसे कोहबर कहते हैं कोहबर कक्ष में विभिन्न प्रतीकों तथा फूल, पौधे व पक्षी आदि का खनिज व वानस्पतिक रंगों आदि से अंकन किया जाता है। कोहबर मिथिला चित्र शैली का सर्वाधिक विख्यात और मन–भावन चित्र है। (चित्र–2, 3) इस चित्रांकन कला में मिथिला की स्त्रियों का आज भी वर्चस्व है।

ग्रामीण स्तर की यह कला मिथिलांचल में तो इतनी गहरी पकड़ बना चुकी है कि यहाँ चप्पे–चप्पे में एक नया कला शिल्पी जन्म लेता है तथा बिहार में कला संस्कृति की परम्परा में 'मधुबनी कला' का स्थान अग्रिम है वस्तुतः इसका आरम्भ कब हुआ यह कहना कठिन है। इसकी प्राचीनता की पुष्टि स्थानीय निवासी यह कहकर करते हैं कि राजा जनक ने राम और सीता के विवाह के अवसर पर मिथिला के राजमहल को भी इन्हीं पारम्परिक लोक चित्रों से सुसज्जित करवाया था।[8] जबकि कला समीक्षकों तथा पुरातत्त्वविदों का कथन है कि सिन्धु घाटी सभ्यता (2500–1750) ई. पू. के पुरातत्त्व अवशेषों में जिस प्रकार की आकृतियाँ मिली है उसी प्रकार की आकृतियाँ वर्तमान में मधुबनी चित्रकला शैली में बनायी जाती है। इस तथ्य के आधार पर बिहार की इस लोक–चित्र शैली का इतिहास सिन्धु घाटी सभ्यता के समकालीन माना जा सकता है।

मिथिलांचल में इसके प्रमुख केन्द्र है–मधुबनी, लेहरियागंज, भवानीपुर, राँती व जितवारपुर। परन्तु इस कला के लिए दो गाँव राँती और जितवारपुर विशेष रूप से प्रसिद्ध है।[9]

मिथिलांचल में महिलाओं की तीन मुख्य कलाएँ रही हैं लिखियां, बीनिया, सिबिया। लिखिया वो कहलाती है जो लिखने की तरह बनती हैं। बीनिया अर्थात् बुनाई से सम्बन्धित और सीबिया का अर्थ सीने–काढ़ने की कला से है। इन्हें महिलाओं ने स्वयं ही विकसित किया है। यह पारम्परिक कला 'मधुबनी' लिखिया श्रेणी की कला है। यह लोक कला काफी समय तक अज्ञात ही थी तथा सर्वप्रथम सन् 1934 में दरभंगा जनपद के मधुबनी क्षेत्र के सब डिवीजनल आफिसर आर्चर महोदय का ध्यान महिलाओं की इस कला की ओर गया। इसके पश्चात् उन्होंने कला मर्मज्ञों का ध्यान मधुबनी में चल रही इस कला की ओर आकृष्ट करने हेतु विभिन्न मैथिल लोक चित्रों का संग्रह किया। इन चित्रों पर आधारित एक लेख सन् 1949 में कला पत्रिका 'मार्ग' में 'मैथिल चित्र' नाम से प्रकाशित किया गया जिसको पढ़कर पुपुल जयकर (अखिल भारतीय हस्तकला मण्डल, नई दिल्ली) ने भी इन चित्रकारों से मिलकर इनकी कला का अध्ययन करने की इच्छा से मधुबनी के कुछ स्थानों का दौरा किया।[10]

सन् 1967–68 में बिहार में आये अकाल में जान–माल की हानि तो अवश्य हुई परन्तु यह बात मधुबनी चित्रकला के लिए जीवनदायी साबित हुआ तथा पुपुल जयकर जो पहले भी इस क्षेत्र में आ चुकी थी ने मधुबनी कलाकारों की सहायतार्थ युवा कलाकार भास्कर कुलकर्णी के सहयोग से एक योजना का क्रियान्वयन किया। इसके अन्तर्गत उन्होंने मधुबनी के विभिन्न गाँवों में कागज बँटवाकर दीवारों पर अंकित चित्रों की कागज पर प्रतिलिपियाँ बनवायी तथा कलाकारों को उचित पारिश्रमिक प्रदान करवाया। इस

कार्य में युवा कलाकार भास्कर कुलकर्णी ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा इस चित्रकला को राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित करने का श्रेय उन्हीं को जाता है। उन्होंने मधुबनी चित्रकारों की कलाकृतियों में निहित अर्थ तथा सौन्दर्य को पहचाना। इसी वर्ष सन् 1967 में ''आल इण्डिया हैण्डीक्राफ्ट बोर्ड'' के तत्त्वाधान में नई दिल्ली में इन चित्रों को प्रदर्शित किया गया। तब से यह कला मधुबनी से निकलकर राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपना स्थान बनाने में सफल सिद्ध हुई। इसके पश्चात् तो कई विद्वानों ने इस लोक कला पर लेख लिखे, यहाँ तक कि विकसित देशों की श्रेणी में अग्रणी जापान में तो मधुबनी शैली के एक कला प्रेमी हासीगाबा ने अपने यहाँ मिथिला कला संग्रहालय की स्थापना की जो इस कला के लिए गौरव की बात है। यही नहीं इस चित्रकला में अर्न्तनिहित अध्यात्मिक दर्शन,भाव–भंगिमा, आर्कषण, लालित्य एवं रंग योजना के कारण ही लंदन की एन्थ्रोपौस गैलरी में सन् 1976 में स्थाई प्रदर्शनी लगायी गयी थी।

मधुबनी जनपद में व्याप्त लोक–चित्रण शैली को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

प्रथम – सवर्ण शैली।

द्वितीय – रेखांकन शैली।

सवर्ण शैली के चित्रों के अन्तर्गत कलाकार सर्वप्रथम प्रस्तावित विषय के अनुरूप आकृतियों की सीमान्त रेखाओं को काले रंग से अंकित करता है। अधिकांशतः कलाकार दोहरी सीमान्त रेखाओं का अंकन करते हैं और इनमें से बाहर की रेखा को छोड़कर दूसरी रेखा की परिधि में लाल, नीला, हरा, पीला, गुलाबी व नारंगी आदि शुद्ध चटकीले रंगों को संयोजित करते हैं। (चित्र–4)

रेखांकन शैली के चित्रों के अन्तर्गत कुछ निश्चित गाँवों की स्त्रियाँ मात्र रेखाओं के विभिन्न प्रयोगों से अति उत्तम चित्रों का सृजन करती हैं। सवर्ण शैली के चित्रों की भाँति इस शैली के चित्रों में विविध रंगों के प्रयोग के स्थान पर बहुत सीमित रंगों की रेखाओं का प्रयोग किया जाता है। काला और गहरा लाल रंग रेखा–चित्रों के मुख्य आधार हैं। (चित्र–5)

आलेख्य के आधार पर मधुबनी, चित्रशैली को कला मर्मज्ञों ने तीन भागों में विभाजित किया है। ये तीन भाग हैं – भूमि–चित्र, भित्ति–चित्र व पट–चित्र।

इन चित्रों को प्राकृतिक रंगों के माध्यम से ही बाँस की डंडी को छितरा कर तूलिका का आकार देकर बनाया जाता है तथा सीमित साधनों के बावजूद स्त्रियाँ प्रकृति में उपस्थित विविध रंगों को घर में ही विधिवत् रूप से तैयार करती हैं। मधुबनी कला में स्त्रियाँ चटकीले रंगों का प्रयोग करती हैं। सम्भवतः यह 'मधुबनी' के हरे–भरे जंगलों तथा रंगीले वातावरण का प्रभाव प्रतीत होता है जो इनके चित्रों के रंगों में दिखता है।[11]

व्यावसायीकरण के कारण मधुबनी चित्रों की चित्रण सामग्री में कुछ परिवर्तन होने से चित्रण विधि पर भी इसका प्रभाव पड़ा। यद्यपि सवर्ण एवं रेखांकन शैली के चित्रों में आज भी मूल विशेषताएँ वही हैं किन्तु जो सबसे बड़ा परिवर्तन आया, वह यह है कि भित्ति और भूमि के चित्र विभिन्न आकार के कागजों एवं अन्य उपलब्ध धरातलों पर बनाये जाने लगे हैं। यहाँ तक कि खपच्चियों का स्थान निब के होल्डर व कलम आदि ने ले लिया है। बढ़ती हुई मॉग तथा कम समय में अधिक चित्रों का निर्माण करने के लिए कलाकार फैब्रिक व एक्रेलिक रंगों का प्रयोग करने लगे हैं। कुछ कलाकार तो निब, होल्डर व ब्रुश आदि का प्रयोग रेखांकन के लिए करते हैं। इस कारण इनकी रेखाओं में बारीकी आ गई है और चित्र अधिक आकर्षक बनने लगे हैं। मधुबनी चित्रकारों के चित्रों की विविधता व काल्पनिक रूपों को देखकर इन कलाकारों की नवीन प्रयोग करने वाली बौद्धिक क्षमता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

मिथिलांचल की यह लोक कला आज दुनिया भर में अपनी अलग पहचान रखती है। यह एक मात्र कला है जो महिलाओं द्वारा विकसित की गयी थी जिसमें पुरुषों का योगदान लेशमात्र भी नहीं था। यह प्राचीन लोक कला ऐसे पुरुष प्रधान समाज में उभरी जब महिलाओं को घूँघट में कैद रहना पड़ता था और महिलाएँ घर की चौखट के बाहर कुछ नहीं जानती थीं तब मिथिलांचल की महिलाओं ने इस कला के माध्यम से अपने मनोभावों को व्यक्त ही नहीं किया बल्कि विश्व मानचित्र पर अपनी उपस्थिति दर्ज करायी।

कोई संस्कार कोई अवसर ऐसा नहीं होता जब मधुबनी की महिलाओं द्वारा इन चित्रों का सृजन न हो। विवाह, जन्म व मुण्डन आदि संस्कारों में विलम्ब भले ही हो जाये परन्तु घर की दीवारों तथा भूमि पर इन चित्रों को अंकित किये बिना कोई संस्कार रीति– रिवाज सम्पन्न नहीं हो सकता। परम्परा पोषित इस कला को मधुबनी की कई महिलाएँ अपना जीवन समर्पित कर चुकी हैं तथा मधुबनी कला की प्रतिष्ठा में चार चाँद लगाने वाली महिला कलाकारों में जितवारपुर की जगदम्बा देवी का नाम सर्वोपरि है जिन्हें सन् 1975 में भारत के भूतपूर्व रेलमंत्री स्व. ललित नारायण मिश्र के अथक प्रयासों के परिणामस्वरूप पहला 'पद्मश्री' पुरस्कार मिला। इनके पश्चात् सन् 1981 में सीता देवी को एवं सन् 1984 में गंगा देवी को 'पद्मश्री' पुरस्कार से अलंकृत किया गया था।[12] इनके अतिरिक्त गोदावरी देवी, यमुना देवी, कपूरी देवी, महासुन्दरी देवी, उर्मिला देवी, शान्ति देवी, शशिकला देवी व यशोदा देवी आदि ने इस कला के विकास में अप्रतिम योगदान दिया।

मधुबनी का पर्याय बन चुकी यशोदा देवी किसी परिचय की मोहताज नहीं हैं। उन्होंने देश में ही नहीं विदेशों में भी मधुबनी कला का परचम लहराकर भारत को गौरवान्वित किया है। (चित्र–6)

2 जनवरी सन् 1944 को दरभंगा जिले के मधुबनी जनपद के जितवारपुर गाँव में जन्मी यशोदा देवी को मिडिल क्लास से आगे पढ़ाई का मौका न मिला। अतः अधिकतर समय घर पर ही व्यतीत हुआ। गृह कार्य से निवृत्त होने के पश्चात् यशोदा देवी बचपन से ही अपनी चाची के साथ मधुबनी चित्रकला में हाथ बँटाया करती थी। उन्हें यह कला अपनी चाची जगदम्बा देवी से विरासत में ही प्राप्त हुई। प्रारम्भ में यशोदा देवी धार्मिक आस्था तथा शौकिया तौर पर इस कला को करती थी। इस प्रकार मात्र सात–आठ वर्ष की आयु से ही उनके हाथ रंगों और रेखाओं से खेलने लगे थे। घर की दीवारों को रंगते–रंगते यशोदा देवी कब इस कला में परिपक्व हो गयी पता ही नहीं चला।[13]

सन् 1962–63 में विवाह के पश्चात् भी जगदम्बा देवी के प्रोत्साहित करने पर इन्होंने कला कार्य जारी रखा और धीरे–धीरे इसे आजीविका के साधन के रूप में अपना

लिया। सन् 1973 में राजकीय सम्मान मिलने के बाद यशोदा देवी को प्रशिक्षण एवं चित्रांकन हेतु विभिन्न राज्यों में आमंत्रित किया जाने लगा।

यशोदा देवी के चित्रों के विषय प्रायः धार्मिक तथा पौराणिक आख्यानों पर ही आधारित होते थे। रामजन्म, कृष्ण की बाल–लीलाएँ, राधा–कृष्ण की रासलीला, सीता स्वंयवर, ब्रह्मा–विष्णु–महेश, दुर्गा, काली, महिषासुर–मर्दिनी, लक्ष्मी, दशावतार, कोहबर आदि यशोदा देवी के प्रिय विषय–वस्तु थे। **(चित्र–7)** इसके अतिरिक्त सूर्य, चन्द्रमा, नवग्रह आदि के दृश्यों तथा विभिन्न प्रकार के वृक्षों, पशु–पक्षियों आदि का भी इनके चित्रों में प्रतीकात्मक अंकन होता था तथा शुभ, पवित्र और मांगलिक समझी जाने वाली आकृतियों का ही अंकन इन्होंने किया। इनके अतिरिक्त सामाजिक सरोकार से सम्बन्धित विषयों को भी यशोदा देवी ने अपनी कला के माध्यम से व्यक्त किया।

अनेक पुरस्कार व सम्मान से सुशोभित यशोदा देवी ने मधुबनी चित्रकला के नये–नये प्रतिमान स्थापित किये तथा सम्पूर्ण जीवन इस कला के सम्वर्द्धन में लगा दिया। यशोदा देवी जी के बहुमूल्य योगदान व इस कला के विविध पक्षों को रेखांकित करने के लिए 'उत्तर प्रदेश क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र, इलाहाबाद' ने उनकी जीवनी पर आधारित एक पुस्तिका का प्रकाशन भी किया। यही नहीं 'इंडियन ऑयल कॉरपोरेशन लिमिटेड' के सन् 1990 के वार्षिक कैलेण्डर एवं सन् 1994 के कृषि और ग्रामीण विकास बैंक के कैलेण्डर में इनकी फोटो को इनकी पेंटिंग सहित प्रकाशित किया गया तथा स्वतन्त्रता दिवस एवं गणतन्त्र दिवस के अवसर पर पटना में आयोजित झाँकियों में अनेक बार इनकी मधुबनी चित्रकृतियों को प्रदर्शित किया गया।[14]

श्रीमती यशोदा देवी मधुबनी को पूर्णतः समर्पित थी। आज इनकी कला से बहुत से पुरुष कलाकार भी प्रेरणा ग्रहण कर रहे हैं। 3 नवम्बर, सन् 1907 में उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र श्री राजकुमार लाल ने इस कला को पूर्णतः आत्मसात् कर लिया तथा मधुबनी कला को जन–जन तक पहुँचाने का कार्य कर रहे हैं।

इस प्रकार कला एवं संस्कृति के झरोखे में भारतीय नारी ने अपनी सम्पूर्ण पहचान अपनी लगन, योग्यता एवं साधन के माध्यम से बनाई है। आज नारी की पहचान पिता–पति या पुत्र के माध्यम से न होकर उसके स्वयं के नाम से होती है। जिसको मिथिलांचल की महिलाओं ने साकार कर दिखाया है। मधुबनी कला भारतीय महिला सशक्तीकरण का एक आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करती है जो आज एक कुटीर उद्योग के रूप में खूब फल–फूल रही है तथा इसकी लोकप्रियता ने देश की सीमाओं को लाँघकर अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की है।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. सत्यकेतु विद्यालंकार : प्राचीन भारत, दिल्ली, 2000, पृष्ठ सं. 124
2. शिवकुमार गुप्त (स.) : प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, जयपुर, 1999, पृष्ठ सं. 70
3. अयज्ञीयो वैष योऽपत्नीकः।
4. वीरेन्द्र सिंह यादव (स.) : अखिल भारतीय शोध सेमिनार– 2009, उरई, जालौन, पृष्ठ सं. 39
5. गिर्राज किशोर अग्रवाल : कला और कलम, अलीगढ़, 2002, पृष्ठ सं. 2
6. नीतू वशिष्ट : 'मधुबनी कला की साधिका यशोदा देवी', एस्थेटिक्स, जुलाई–दिसम्बर, 2011, मेरठ, पृष्ठ सं. 42
7. इम्प्रेशन : 2007–08, वार्षिक पत्रिका, कॉलेज ऑफ आर्ट, नई दिल्ली, पृष्ठ सं. 34
8. अल्का चड्ढा व विभा लोधी : 'मधुबनी चित्रशैली : लोककला की समृद्धि का प्रतीक', भारत की लोक कला, जयपुर, 2012, पृष्ठ सं. 199
9. अवधेश अमन : मिथिला की लोक चित्रकला सफलताएँ–असफलताएँ, नई दिल्ली, 1992, पृष्ठ सं. 7
10. श्याम सुन्दर दुबे : लोक चित्रकला, जयपुर, 2005, पृष्ठ सं. 4
11. के. प्रकाश : मधुबनी, बम्बई, 1994, पृष्ठ सं. 5
12. श्याम शर्मा :'मिथिला की लोक चित्रशैली', कला दीर्घा, लखनऊ, अक्टूबर 2000, पृष्ठ सं. 11
13. नीतू वशिष्ट : 'मधुबनी कला की साधिका यशोदा देवी', एस्थेटिक्स,जुलाई–दिसम्बर,2011, मेरठ, पृष्ठ सं. 44
14. नीतू वशिष्ट : 'मधुबनी कला की साधिका यशोदा देवी', एस्थेटिक्स,जुलाई–दिसम्बर,2011,मेरठ, पृष्ठ सं. 46

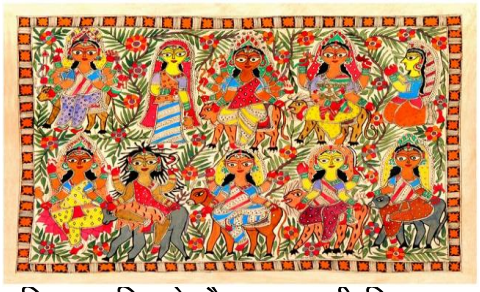

चित्र–1:शक्ति के नौ रूप, मधुबनी चित्रकला

चित्र–2:कोहबर मधुबनी चित्रकला

चित्र–3 : कोहबर मधुबनी चित्रकला

चित्र–4: केवट द्वारा नदी पार करवाना, मधुबनी चित्रकला

चित्र–5 मयूर, मधुबनी चित्रकला

चित्र–6: मधुबनी चित्रकार, यशोदा देवी

चित्र–7: दुल्हन की डोली, चित्रकार यशोदा देवी